[Conference- Innovation in Music & Dance :January,2015] ISSN- 2350-0530(O) 2394-3629(P)
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v3.i1SE.2015.3419

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

संगीत शिक्षण एवं प्रदर्शन में इलेक्ट्रानिक वाद्य यंत्रों की भूमिका

दुर्गेश पाण्डे
शोधार्थी
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्य प्रदेश)

गीतं नादात्मकं वाद्यँ नादव्यक्त्या प्रशस्यते।
तद्द्वयानुगतं नृत्तं नादाधीनमतस्त्रयम् ।।

गीत नादात्मक है। वाद्य नाद की अभिव्यक्ति करने के कारण प्रशसित होता है। नृत्य इन दोनों का अनुगत है। इसलिए तीनों नाद के अधीन हैं।

नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात्पदाद्वचः ।
वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जगत् ।।

नाद से वर्ण, वर्ण से पद, पद से वाक्य व्यक्त होता है। वाक्य से ही जगत् का व्यवहार होता है, इसलिए यह जगत् नाद के अधीन है।

नाद का छोटा–बड़ापन तीव्रता पर आधारित होता है। इसका प्रभाव मस्तिष्क और हृदय पर जब पड़ता है तो पहले रक्त क्रिया प्रभावित होती है और उसके बाद मानसिक अनुभूति के रूप में उसका रूपांतर होता है। नाद की तीव्रता नापने के लिए डेसीबल पद्धति को अपनाते हैं। इसे फॉन (Phan) नाम से भी जाना जाता है, जिसके आधार पर साधारण बातचीत की ध्वनि का क्षेत्र 60 से 70 फॉन के मध्य में रहता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि एक बाँसुरी से उत्पन्न नाद का ध्वनि स्तर 40 फॉन है तो दो बाँसुरियों के सम्मिलित नाद का स्तर 80 फॉन न होकर केवल 43 फॉन के लगभग होगा और 10 बाँसुरियों का नाद स्तर 50 फॉन के लगभग होगा। नाद की तीव्रता में अंतर आता है न कि उसके ऊँचे–नीचेपन में।

कोई भी ध्वनि एक अभीष्ट आंदोलन–संख्या की होने पर कर्णप्रिय लगती है। और आन्दोलन संख्या घट–बढ़ जाने पर कर्णकटु हो जाती है। पाश्चात्य विद्धानों का कहना है कि भिन्न–भिन्न ध्वनियाँ जब कानों में पहुँचती हैं तो उन्हें समझने के लिए समय के अलग–अलग अंतरालों की जरूरत होती है। **सीशोर** (Seashore) के मतानुसार 128 आंदोलन संख्यावाली ध्वनि को 09 सेकण्ड, 256 आंदोलन संख्यावाली ध्वनि को 07 सेकण्ड, 384 आंदोलन संख्यावाली ध्वनि को 04 सेकण्ड और 512 आंदोलन संख्यावाली ध्वनि को भी लगभग इतना ही समय इन सबके स्पष्ट सुने जाने के लिए आवष्यक है।

ध्वनि में जब उँचा–नीचापन होता है तो उसे स्वरों की आंदोलन संख्या या संवाद संबंध के आधार पर परखा जाता है। संवा–संबंध में जो नाद कानों को प्रिय लगते हैं उनके आधार पर संगीत की रचनाएं की जाती हैं। अप्रिय स्वर भारतीय संगीत में अनिष्टता के सूचक माने जाते हैं, यही कारण है कि किसी मोटर के हॉर्न को सुनकर हम सड़क से हट जाते हैं जबकि सुरीला हॉर्न उतना भय पैदा नहीं करता। कोयल की कूक और शोर की दहाड़ से भी यह उदाहरण स्पष्ट हो सकता है।

मनुष्य के द्वारा संगीत की सृष्टि दो प्रकार से होती है– एक प्रेरणा के आधार पर और दूसरी उसके संचित ज्ञान के आधार पर। प्रेरणा के आधार पर प्रस्तुत संगीत श्रोता को जल्दी आकर्षित करता है और संचित ज्ञान के आधार पर प्रस्तुत संगीत मेकेनिकल होने से मधुर तो लगता है परंतु अन्तस्तल को झकझोर नहीं सकता। यही कारण है कि जब हम किसी लोक गीत की धुन को सुनते हैं तो वह सीधे–साधे से चंद स्वरों की धुन हमें छू जाती है, हम उसे अनेक बार सुनते रहें तब भी तृप्त नहीं होते बल्कि रात–रातभर जागकर उसका आनंद लेते हैं जबकि नियमों की परिधि में जकड़ी शास्त्रीय संगीत की बंदिशें सुनकर वाह–वाह तो कर देते हैं परंतु उसकी एक ही स्थायी को रातभर नहीं सुन सकते, चंद मिनटों में जमुहाई लेने लगते हैं।

जिस तरह से हम नियमबद्ध संगीत को ज्यादा देर सुन नहीं सकते और लोक गीत की धुनों को हम कई बार सुन सकते हैं इसका अर्थ यह है कि इंसान अपनी वास्तविक रचना को ज्यादा पसंद करता है।

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

संगीत की शिक्षा पद्धति भी कुछ इसी तरह है। जब हम किसी विघार्थी को संगीत का शिक्षण देते हैं उस वक्त उसे प्रारंभिक स्वरों का तथा तालों का ज्ञान प्रदान करते हैं। सर्वप्रथम हम उसे स्वरों से अवगत कराते हैं तत्पष्चात् हम उसके कंठ से निकलने वाली ध्वनि को परिष्कृत करते हैं और निरंतर अभ्यास से उसे पूर्ण करते हैं।

शिक्षण की गुरूकुल पद्धति में सीना–ब–सीना तालीम गुरू शिष्य के बीच में हुआ करती थी जो कि लकड़ी के तानपूरे अपने पूरे यथावत स्वरूप में गुरू के कण्ठ द्वारा शिक्षार्थी तक पहुँचती थी। यह ज्ञान स्थायी रूप का ज्ञान हुआ करता था जो वर्षों तक मन में दृढ़ता से बसा रहता था। यही आधार है कि जब कोई वयस्क कलाकार स्टेज पर गायन प्रस्तुत करते हैं उस वक्त उन्हें किसी भी साधना की जरूरत नहीं होती।

"Old is Gold" इस कहावत को यदि चरितार्थ किया जाये तो यह कहना उचित होगा कि आधुनिक काल में इलेक्ट्रानिक युग के आगमन से हम अपनी पुरानी चीजें यथावत स्थिति में नहीं रख पा रहे हैं बल्कि उनमें हम बदलाव लाते जा रहे हैं एवं उनका वास्तविक स्वरूप धूमिल होता जा रहा है।

इलेक्ट्रॉनिक युग के अंधाधुंध व्यवहार से संगीत की वास्तविकता को जो हानि हुई है उसकी भरपाई होना अब संभव नहीं है। संगीत का वास्तविक स्वरूप जो कभी असरदार हुआ करता था आज बे–असर होता चला जा रहा है।

विद्यार्थियों को इलेक्ट्रानिक वाद्ययंत्रों द्वारा दिया जा रहा प्रशिक्षण ठीक उसी तरह है जिस तरह से हम आज 24 केरेट सोने की जगह 20 और 22 केरेट सोना परोस रहे हैं । इसका अनुमान इसी बात पर से लगाया जा सकता है कि आज संगीत का विद्यार्थी मात्र 2–3 वर्षों में अपने आपको बड़ा कलाकार समझने लगता है।

लकड़ी के तानपूरे में मिलाने के लिए जिस समझ की ज़रूरत होती है उस समझ का आना केवल 2 या 3 वर्षों में संभव नहीं है बल्कि उसे 5 साल से भी अधिक समय लग सकता है। यह बात गुरू के अपने अनुभव पर भी आधारित होती है। जिस प्रकार जमीन में बीज बोते ही उससे फल नहीं लिये जा सकते हैं ठीक उसी प्रकार संगीत सीखना प्रारंभ करते से ही लकड़ी का तानपूरा मिलाना कठिन है।

लकडी के तानपूरे को अलग–अलग काष्ठ परीक्षण द्वारा तैयार किया जाता है ताकि उस पर हवा, पानी, गर्मी, नमी इनका असर न हो या कम हो। हम जब ग्रीन रूम में तानपूरा मिलाते हैं, तो मंच पर आने के बाद हमें तानपुरा फिर से मिलाना होता है। जिसके लिए समय के साथ–साथ निपुणता की भी आवश्यकता होती है। कलाकार यह भरकर प्रयास करता है कि उसका अपना कार्यक्रम सफल हो इस हेतु वह हर छोटी–छोटी चीज पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। जब हम तानपूरे को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं तो उसके आकार की वजह से तथा उसके नाजुक स्वरूप की वजह से हमें अधिक सावधानी बरतनी पड़ती है। मौसम की मार से भी हमें इसे बचाना होता है।

ताल वाद्यों का भी यही हाल है। तबला, पखावज, ढोलक, तुम्बा तथा सभी अवनध्द वाद्यों पर मौसम का असर बहुत जल्दी होता है। आधुनिकता के इस युग में हमारा सफर अधिक गतिशील हो रहा है। यही गति हम अपने संपूर्ण जीवन में आज अपना चुके हैं। हमें किसी भी चीज में देरी का होना अधिकता का कारण बनता है। शायद यही वजह है कि हमने मूल वाद्यों को परे हटाकर उनकी जगह इलेक्ट्रिानिक वाद्य यंत्रों को अपनाना उचित समझा है।

आज देश–विदेश के बड़े–बड़े कलाकार अपने साथ इलेक्ट्रॉनिक वाद्य यंत्रों को विविधता के साथ अपना रहे हैं। इलेक्ट्रिानिक वाद्य यंत्रों में सर्वप्रथम सुरपेटी, तत्पष्चात् रागिनी उसके उपरांत स्वरांगिनी और अब डिजिटल तानपूरा ऐसा आधुनिकता का स्वरूप बनता गया। अब तो स्वर मंडल भी इलेक्ट्रिानिक रूप में है। हमारे देष में लगभग 80 प्रतिशत संगीतकार, कलाकार, गुरू एवं शिष्य इलेक्ट्रिानिक वाद्य यंत्रों का उपयोग कर रहे हैं। देश विदेश में कई कंपनियाँ हैं जिन्होंने इलेक्ट्रॉनिक वाद्य यंत्रों का निर्माण किया। जिनमें रेडेल, रागिनी, एपल, यामाहा, कॉर्ग इत्यादि कंपनियों ने अपने वाद्य यंत्र बाजार में उपलब्ध कराये हैं। एपल कंपनी ने अपनी श्रेष्ठतम कृति से ऑडियो संगीत की दुनिया में एक नई क्रांति को जन्म दिया है। डिजिटल तानपूरे से लेकर डिजिटल तबला, डिजिटल स्वरमण्डल तथा विभिन्न सहायक वाद्यों का रूपांतर इलेक्ट्रानिक साधनों में किया है। जिनका विद्यार्थियों की शिक्षा एवं कलाकारों के मंच प्रदर्शन पर अच्छा तथा बुरा दोनों तरह का प्रभाव पड़ रहा है।

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

जैसा कि मैंने पूर्व में उल्लेखित किया है कि गुरू–शिष्य परम्परा एवं संगीत का मनोविज्ञान हमें इस बात को स्पष्ट करने में सहायता करेगा कि आज भी हम इलेक्ट्रिानिक युग को अपनाकर संगीत के अपने मूल रूप से दूर होते जा रहे हैं।

संगीत शिक्षण में उच्च कोटि के विद्यार्थियों का निर्माण करना इलेक्ट्रॉनिक युग द्वारा संभव नहीं हो सकेगा । अतः हमें अपनी पुरानी विधि पर कड़े परिश्रम करने होंगे और उसे पुनः अपने यथावत स्वरूप लाना होगा।

यद्यपि हम मंच पर आधुनिक उपकरणों द्वारा अपनी प्रस्तुति को प्रभावी बनाने में सफल हुए हैं परंतु आज भी हमें इन प्रस्तुतियों में उस युग की कमी महसूस होती है। युग–युगांतर तक हमारी परम्परा तभी जीवित रह सकती है जब हम अपने मूल को न भूलें और उस पर तटस्थ रहने का सफल प्रयास करें।

इलेक्ट्रानिक वाद्यों का शिक्षण–प्रशिक्षण में उपयोग हमारी कला को अपने मूल रूप से दूर करता जा रहा है। विद्यार्थियों को इसका एहसास तब होता है जब वह इलेक्ट्रानिक वाद्य यंत्रों के बिना गायन का प्रयास करते हैं। वह अपने स्वर को पूर्णता से नहीं लगा पाते इसका कारण लकड़ी के तानपूरे से निकलने वाले स्वयंभू नाद का उनके कानों तक न पहुँच पाना है। इसीलिए सितार का इलेक्ट्रॉनिक रूप उस तरह की मींड और मिठास नहीं दे सकता जिस तरह से लकड़ी का सितार बोलता है। ठीक यही बात विद्यार्थी के कण्ठ पर भी लागू होती है।

संगीत में मंच प्रदर्षन की कला को हर कोई भंलीभाँति नहीं समझ पाता किन्तु एक कलाकार अपने मंच प्रदर्शन की कला को उभारने का पूर्ण प्रयास करता है। निपुणता के अभाव में वह इलेक्ट्रानिक वाद्य यंत्रों का सहारा ले सकता है। किन्तु यह उसकी अपनी प्रस्तुति पर आधारित होता है कि वह किन वाद्य यंत्रों का चयन करे। यातायात की सुविधा के लिए भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए आजकल की इस भीड़ में यह कठिन है कि हम इतने नाजुक वाद्य यंत्रों को सहजता से उनके वास्तविक रूप में सुरक्षित ले जा सकें। शायद यही आज सबसे बड़ा कारण है और हमारा सबसे बड़ा दुर्भाग्य भी।